



एग्री मैगज़ीन

(कृषि लेखों के लिए अंतरराष्ट्रीय ई-पत्रिका)

वर्ष: 02, अंक: 11 (नवम्बर, 2025)

www.agrimagazine.in पर ऑनलाइन उपलब्ध

© एग्री मैगज़ीन, आई. एस. एस. एन.: 3048-8656

गेहूँ का काला रतुआ रोग एवं उसका पर्यावरण-अनुकूल प्रबंधन

*अभय शर्मा एवं अर्चना कुशवाहा

पी.एच.डी. शोधकर्ता, पादप रोग विज्ञान विभाग, गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
पंतनगर, उत्तराखंड, भारत

*संवादी लेखक का ईमेल पता: abhaysharma2oct@gmail.com

गेहूँ भारत की प्रमुख रबी फसलों में से एक है, जिसकी उत्पादन क्षमता विभिन्न कीट एवं रोगों के कारण प्रभावित होती रहती है। इनमें काला रतुआ एक अत्यन्त हानिकारक तथा तीव्र गति से फैलने वाला रोग है। यह रोग तनों, पत्तियों और पत्ती-डंठल पर काले रंग के उभरे हुए धब्बेनुमा फफोले बनाता है, जो अनुकूल तापमान और अधिक आर्द्रता की स्थिति में तेजी से फैलकर पूरी फसल को कमजोर कर देते हैं। इसके परिणामस्वरूप दानों का भराव कम हो जाता है तथा उपज में भारी कमी आ जाती है। आज के बदलते जलवायु-परिस्थितियों तथा रासायनिक दवाओं के अत्यधिक उपयोग के कारण मिट्टी, पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव बढ़ते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि किसान रोग-प्रतिरोधी किस्मों, जैव-उपचार, नीम-आधारित उत्पादों, फसल चक्र तथा खेत की स्वच्छता जैसे पर्यावरण-अनुकूल, सुरक्षित और टिकाऊ प्रबंधन उपायों को अपनाएँ। इन उपायों से न केवल रोग का प्रकोप कम होता है, बल्कि लागत में बचत, मिट्टी की उर्वरता में सुधार तथा फसल की गुणवत्ता में भी वृद्धि होती है। अतः, गेहूँ की सुरक्षित एवं स्थायी उत्पादकता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है कि किसान आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के साथ पर्यावरण-अनुकूल प्रबंधन तकनीकों को अपनाएँ। प्राकृतिक उपाय न केवल रोग नियंत्रण में सहायक होते हैं, बल्कि भूमि की उर्वरता, फसल की गुणवत्ता तथा पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार, समग्र एवं हरित प्रबंधन से किसान कम लागत में स्वस्थ, टिकाऊ और लाभकारी गेहूँ उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

रोग का कारक जीव: काला रतुआ रोग *पक्सिनिया ग्रैमिनिस् ट्रिटिसी* कवक के आक्रमण के कारण होता है। यह एक परजीवी कवक है, जो जीवित पौधों पर ही पनपता है। यह विविध प्रकार के बीजाणु उत्पन्न करने वाला जटिल जीवन-चक्र वाला कवक है। इसके बीजाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं और हवा के माध्यम से लम्बी दूरी तक जा सकते हैं। यह कवक दो भिन्न पोषक पौधों पर अपना जीवन-चक्र पूरा करता है और अनुकूल तापमान एवं आर्द्रता की स्थिति में तीव्र गति से वृद्धि करता है। इसकी संरचना में बीजाणु-धारक संरचनाएँ विकसित होती हैं, जिनसे लगातार नए बीजाणु बनते रहते हैं।

रोग के लक्षण: काला रतुआ रोग में प्रारम्भिक रूप से गेहूँ के तने तथा पत्ती-डंठल पर लम्बी अथवा अण्डाकार आकार की लाल-भूरी उभरी धारियाँ दिखाई देती हैं, जो बढ़ते प्रकोप के साथ गाढ़े काले रंग में परिवर्तित हो जाती हैं। इन धारियों पर बने फफोले समय के साथ फट जाते हैं और इनमें से काले रंग का चूर्ण जैसा पदार्थ बाहर निकलता है, जो हाथ लगाने पर स्पष्ट रूप से चिपकता है। पत्तियों तथा आवरण-पत्र पर भी इसी प्रकार की काली पट्टियाँ बन जाती हैं, जिससे उनका हरित भाग नष्ट होकर प्रकाश-संश्लेषण की क्षमता घट जाती है। संक्रमण बढ़ने पर तना और पत्ती-डंठल कमजोर हो जाते हैं, जिसके कारण पौधा आसानी से झुक जाता है। रोग का प्रकोप यदि अधिक हो जाए तो यह प्रभाव बालियों तक पहुँचकर दानों के भराव को प्रभावित करता है, जिससे दाने हल्के, सिकुड़े हुए तथा कम गुणवत्ता वाले बनते हैं। अंततः पौधा समय से पहले सूखने लगता है और कुल उत्पादन में भारी कमी आती है।

रोग से होने वाला नुकसान: काला रतुआ रोग से गेहूँ के पौधे की वृद्धि अत्यन्त प्रभावित होती है। तने एवं पत्तियों पर बने काले फफोले पौधे के हरित कोशिकीय-ऊतकों को नष्ट कर देते हैं, जिससे प्रकाश-संश्लेषण की क्षमता घट जाती है। तना कमजोर पड़ने से पौधा झुकने लगता है और दानों तक पर्याप्त पोषक तत्व नहीं पहुँच पाते। गंभीर संक्रमण की स्थिति में दानों का भराव रुक जाता है तथा वह छोटे, सिकुड़े हुए और कम वजन वाले बनते हैं। इस रोग से उत्पादन में 30 से 70 प्रतिशत तक कमी दर्ज की गई है, जबकि अनुकूल परिस्थितियों में खेत की पूरी फसल भी नष्ट हो सकती है। गुणवत्ता में कमी होने के कारण बाजार मूल्य भी घट जाता है, जिससे किसान को दोहरा नुकसान होता है।

रोग के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ: काला रतुआ रोग के प्रसार के लिए गरम तथा नम वातावरण अत्यन्त अनुकूल माना जाता है। लगभग 20 से 30 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा अधिक सापेक्ष आर्द्रता की स्थिति में यह कवक तीव्र गति से बीजाणु उत्पन्न करता है और नए पौधों में संक्रमण फैलाता है। लगातार कोहरा छाए रहना, हल्की वर्षा, बादलों वाला मौसम तथा खेत में अत्यधिक घनी बुवाई इस रोग की तीव्रता को बढ़ाने वाले प्रमुख कारक हैं। तेज हवा बीजाणुओं को दूर-दूर तक ले जाती है, जिससे रोग नए क्षेत्रों में शीघ्रता से फैल जाता है। इसके अतिरिक्त रोग-ग्रस्त पौध-अवशेषों को खेत में छोड़ देना तथा फसल की देर से बोआई करना भी इस रोग के प्रकोप को बढ़ावा देता है।

रोग का पर्यावरण-अनुकूल प्रबंधन

- ❖ **रोग-प्रतिरोधी किस्मों को अपनाना:** रोग-प्रतिरोधी किस्मों को अपनाना काला रतुआ नियंत्रण का सबसे प्रभावी एवं सरल उपाय माना जाता है। ऐसी किस्मों में प्राकृतिक प्रतिरोध क्षमता अधिक होती है, जिससे रोग का प्रकोप 70 से 90 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। किसानों के लिए वर्तमान में अनुशंसित प्रमुख गेहूँ की रोग-प्रतिरोधी किस्मों में CG 1029, HI 8802, HI 1633, GW 1346, CG 1018, MP (JW) 1323, NIAW 3624 तथा AAI&W15 विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, ये नवीन रूप से जारी की गई किस्में हैं। ये किस्में न केवल रतुआ रोग का सामना करने में सक्षम हैं, बल्कि अच्छी उपज क्षमता और अनुकूल कृषि-विशेषताओं के कारण किसानों द्वारा व्यापक रूप से अपनाई जा रही हैं।
- ❖ **खेत की स्वच्छता:** खेत की स्वच्छता काला रतुआ रोग को नियंत्रित करने का अत्यंत महत्वपूर्ण उपाय है। रोगग्रस्त पौधों को तुरंत खेत से बाहर निकालकर नष्ट कर देना चाहिए, ताकि बीजाणु आगे न फैलें। कटाई के बाद बचे हुए अवशेषों को भी नष्ट करना आवश्यक है, क्योंकि इनमें रोग लंबे समय तक जीवित रह सकता है। साथ ही खेत में उपस्थित खरपतवारों को हटाना चाहिए, क्योंकि वह रोग के वैकल्पिक मेजबान बनकर संक्रमण के प्रसार में सहायता करते हैं। स्वच्छ खेत रोग नियंत्रण की नींव है और इससे रोग का दबाव काफी कम होता है।
- ❖ **जैविक बीजोपचार का प्रयोग करना:** जैविक बीजोपचार गेहूँ की फसल को काला रतुआ सहित अनेक फफूंदजनित रोगों से सुरक्षित रखने का अत्यन्त प्रभावी और पर्यावरण-अनुकूल उपाय है। बीज बोने से पहले *ट्राइकोडर्मा हरजियानम* अथवा *ट्राइकोडर्मा विरिडे* की 4 से 5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की मात्रा से उपचार करने पर पौधों को प्रारम्भिक अवस्था में ही सशक्त सुरक्षा प्राप्त होती है तथा उनकी स्वाभाविक प्रतिरोध क्षमता में वृद्धि हो। इसी प्रकार *स्ट्र्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस* का 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज उपचार रोग-विरोधी क्षमता को उल्लेखनीय रूप से बढ़ाता है और अपनी प्राकृतिक कवक-विरोधी क्रिया द्वारा हानिकारक कवकों के विकास को रोकता है। अतः बीजोपचार को प्रत्येक किसान अवश्य अपनाएँ, क्योंकि इससे फसल की प्रारम्भिक वृद्धि सशक्त होती है और रोगों का प्रकोप काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।
- ❖ **प्राकृतिक एवं जैविक छिड़काव:** प्राकृतिक एवं जैविक छिड़काव गेहूँ की फसल को काला रतुआ जैसे रोगों से सुरक्षित रखने का सरल और पर्यावरण-अनुकूल उपाय है। इसमें नीम के तेल का 5 मिली प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना अत्यंत लाभकारी होता है, क्योंकि यह कवक के बीजाणुओं के अंकुरण को रोकता है और पत्तियों पर एक सुरक्षात्मक परत बनाता है। इसी प्रकार दशपर्णी अर्क का 10 से 15 प्रतिशत घोल (अर्थात् 1 लीटर पानी में 100 से 150 मिली अर्क) प्राकृतिक कवकरोधी गुणों के कारण तनों और पत्तियों पर रोग के प्रसार को धीमा करता है। गौमूत्र आधारित 20 प्रतिशत घोल (1 लीटर पानी में 200 मिली गौमूत्र) भी रोग के प्रारम्भिक चरण में अत्यंत प्रभावी सिद्ध होता है और पौधों की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। इस प्रकार इन जैविक छिड़कावों का प्रयोग करके किसान बिना रासायनिक दवाओं पर अधिक निर्भर हुए सुरक्षित एवं टिकाऊ रोग प्रबंधन कर सकते हैं।
- ❖ **कृषि-क्रियात्मक उपाय:** यह गेहूँ की फसल में काला रतुआ रोग के प्रसार को कम करने का एक सरल और प्रभावी तरीका है। समय पर बुवाई करना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि देर से बोई गई फसल में रतुआ का प्रकोप अधिक देखने को मिलता है। फसल चक्र अपनाकर गेहूँ के बाद लगातार गेहूँ नहीं बोना चाहिए, जिससे रोग का जीवन चक्र टूट जाता है और संक्रमण कम होता है। खेत में उचित पौध दूरी बनाए रखने और बेहतर वायु संचार सुनिश्चित करने से अत्यधिक नमी नहीं बनती, जिससे रोग के फैलने की संभावना घटती है। सिंचाई हमेशा संतुलित रूप से करें, क्योंकि अत्यधिक नमी रतुआ रोग को बढ़ावा देती है और साथ ही खेत में पानी रुकने नहीं देना चाहिए। ये सभी उपाय मिलकर फसल को स्वस्थ रखते हैं और रोग के प्रकोप को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करते हैं।
- ❖ **जैव उर्वरकों का प्रयोग:** जैव उर्वरकों जैसे एजोटोबैक्टर, फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु तथा माइकोराइजा का प्रयोग गेहूँ की फसल को स्वाभाविक रूप से सशक्त बनाने में अत्यंत सहायक होता है। इन जैव उर्वरकों के नियमित उपयोग से पौधे अधिक स्वस्थ बनते हैं, उनकी जड़ प्रणाली मजबूत होती है और मिट्टी से पोषक तत्वों के अवशोषण की क्षमता बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप पौधों की रोग-प्रतिरोधक शक्ति में उल्लेखनीय वृद्धि होती है, जिससे काला रतुआ सहित अनेक रोगों का प्रभाव स्वाभाविक रूप से कम हो जाता है। जैव उर्वरकों का सतत प्रयोग पर्यावरण-अनुकूल, सुरक्षित और टिकाऊ कृषि व्यवस्था अपनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण व उपयोगी कदम है।
- ❖ **किसानों के लिए एकीकृत पर्यावरण-अनुकूल प्रबंधन:** किसानों के लिए एकीकृत पर्यावरण-अनुकूल प्रबंधन मॉडल काला रतुआ रोग नियंत्रण का अत्यंत प्रभावी तथा व्यवहारिक तरीका है। इस 6-चरणीय सरल मॉडल में रोग-प्रतिरोधी किस्मों का चयन, जैविक बीजोपचार, समय पर बुवाई, जैव उर्वरकों के साथ संतुलित पोषण, नीम, दशपर्णी अथवा गौमूत्र आधारित जैविक छिड़काव तथा खेत की साफ-सफाई और फसल अवशेषों का उचित प्रबंधन शामिल है। इन सभी उपायों का एकीकृत प्रयोग फसल को स्वाभाविक रूप से सशक्त बनाता है और रोग के प्रसार को काफी हद तक रोकता है। यह पर्यावरण-अनुकूल मॉडल काला रतुआ के नियंत्रण में लगभग 70 से 80 प्रतिशत तक प्रभावी सिद्ध होता है और किसानों को सुरक्षित, कम लागत तथा टिकाऊ खेती की दिशा में बढ़ने में सहायता प्रदान करता है।

निष्कर्ष

गेहूँ का काला रतुआ रोग अत्यन्त हानिकारक होने के बावजूद पर्यावरण-अनुकूल उपायों द्वारा प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है। रोग-प्रतिरोधी किस्मों का चयन फसल की प्राकृतिक सुरक्षा बढ़ाता है और रोग का प्रारम्भिक प्रकोप कम करता है। जैविक बीजोपचार और जैव उर्वरकों के प्रयोग से पौधों की प्रतिरोधक क्षमता सशक्त होती है और उनकी जड़ प्रणाली मजबूत बनती है। नीम, दशपर्णी एवं गौमूत्र आधारित प्राकृतिक छिड़काव रोग के प्रसार को धीमा करते हैं। समय पर बुवाई, फसल चक्र, उचित पौध दूरी, संतुलित सिंचाई और खेत की स्वच्छता फसल को स्वस्थ बनाए रखने में सहायक हैं। इन उपायों का एकीकृत उपयोग फसल को मजबूत, टिकाऊ और रोग-प्रतिरोधक बनाता है। इस प्रकार, एकीकृत पर्यावरण-अनुकूल प्रबंधन अपनाकर किसान सुरक्षित, लाभकारी और उच्च गुणवत्ता वाला गेहूँ उत्पादन सुनिश्चित कर सकते हैं।